चन्दामामा
माँ-बच्चों का मासिक पत्र

ब्रम्हदत्त जब काशी का राजा था, तब एक बार भगवान बोधिसत्व बन्दर के वेश में पैदा हुए और हिमालय पहाड़ के एक पेड़ पर रहने लगे।

जन्मे तो ये वे बानर-वंश में, फिर भी आदमी में पाए जाने वाले सभी अच्छे गुण, सुन्दर चाल-चलन उस बन्दर में दीख पड़ते थे। इसलिए उस जङ्गल में रहने वाले सभी जीव-जन्तु अपने दुख-सुख सुनाने, और उनके दूर करने का उपाय जानने के लिए, उस भले बन्दर के पास आया करते थे।

दरअसल उस भले बन्दर को बातें सुन कर, जङ्गल के जानवरों ने अपना क्रूर स्वभाव ही नहीं छोड़ा, बल्कि साधु बन्दर के शिष्य होकर मुक्ति भी पाली थी। इतना ही नहीं, वे लोग बड़े सवेरे उठ कर गङ्गा में स्नान कर आते थे, और मीठे-मीठे फल तोड़ कर उसे गुरु-दक्षिणा-रूप में भेंट धरते थे।

इस तरह जब वह भला बन्दर जङ्गली जीवों के बीच रह रहा था, तब एक दिन उस के कानो में एक करुण चीख आकर पहुँची।

सुनते ही वह बन्दर उठा और "लो अभी आया !" कहता जहाँ से वह शब्द आ रहा था उस ओर दौड़ पड़ा।

देखता क्या है कि एक पेड़ के नीचे एक गन्दा गड्ढा है। वह बहुत गहरा था। उसमें से दम घोंटने वाली बदबू निकल रही थी और उसमें पड़ा हुआ एक आदमी हाथ-पैर मारता हुआ चिल्ला रहा था।

उसकी दुरवस्था देख कर बन्दर का दिल पिघल गया। आँखों में आँसू छल-छला आए। जरा भी आगा-पीछा किए बगैर वह उस नरक कुण्ड में कूद पड़ा। फिर उस

आदमी को अपनी पीठ पर उठाया और एक छलाँग में कुण्ड के ऊपर आ गया।

इतना ही नहीं, उस भले बानर ने उस आदमी को एक चट्टान पर सुला दिया। और खाने के लिए मीठे-मीठे फल लाकर उसके सामने रख दिए। फिर वह जङ्गल में चला गया, और वहाँ से जड़ी-बूटी खोज लाया, और पत्थर पर घिस घास कर उसके घाव पर मरहम पट्टी कर दी। इस प्रकार सेवा सुश्रूषा होने के बाद उस आदमी की पीड़ा कम हुई और वह गहरी नींद में जा पड़ा।

कुछ देर के बाद वह सोकर उठा। देखा कि उस के पास ही एक बन्दर बैठा हुआ है। बन्दर को देख कर उस आदमी के मन में कई तरह के भाव उठे।

जाने उसने क्या सोच कर कहा-"अरे भाई ! तू मुझे बहुत कष्ट से उठा लाया था। इससे तू बहुत थक गया होगा, जाकर तू भी थोड़ी देर आराम कर ले।"

उस आदमी की बात पर विश्वास करके थका-माँदा वह बन्दर आँखें मूँद कर सोने लगा। बन्दर के सोते ही उस आदमी के मन में एक दुर्बुद्धि पैदा हुई।

"इस बन्दर को क्यों न जान से मार डालें और देखें कि इसका कलेजा कैसा होता है ?"

कैसा दुष्ट था वह ! बन्दर ने उसकी जान बचाई थी। लेकिन वह कैसा एहसान- फरामोश निकला कि जरा भी दया माया नहीं।

बस उसने एक बड़ा सा पत्थर उठा लिया, और सोए हुए उस बन्दर पर पटक दिया।

लेकिन उसका निशाना चूक गया। वह पत्थर कुछ दूर पर गिरा। इसी से बन्दर को लगा नहीं। और उसके गिरने की आवाज से उसकी नींद टूट गई। बन्दर को जागा हुआ देख कर उस दुष्ट के दिल

पर पत्थर सा पड़ गया। सोचा था क्या और हुआ क्या ? डर के मारे उसके प्राण सूख गए।

जाग कर उस बन्दर ने उस आदमी के मुँह की ओर देखा, फिर अपने पास पड़े हुए पत्थर की ओर नजर फेरी। किसी सबूत की कोई जरूरत न रह गई थी। उसकी सारी दुष्टता इससे समझ में आ गई।

लेकिन बन्दर इससे जरा भी विचलित नहीं हुआ। उसने सोचा- "यह तो ऐसे ही अधमरा हो गया है। इसे फिर से मारना बुद्धिमानी का काम नहीं होगा।" यों सोचता वह बन्दर कुछ न कह कर सिर्फ उसकी ओर देखता रह गया। लेकिन वह सरल- दृष्टि ही उसे आग की तरह जला रही थी। फिर बानर के बेश में रहने वाले भगवान बोधिसत्व ने उसे यों उपदेश दिया-"वत्स! तू डर मत, मैं तेरी कोई बुराई नहीं करूँगा। लेकिन तू जो दुष्टता करने जा रहा था, इसकी भनक अगर यहाँ के किसी जीव-जन्तु के कानों में पड़ी, तो तू यहाँ एक क्षण भी खड़ा नहीं रह सकता। मेरे साथ चल, उन के आने से पहले ही इस जङ्गल से मैं तुझे सही-सलामत पार कर दूँ।" यों

कह कर उस बन्दर ने उसे जङ्गल से पार कर दिया, और दोनों ने अपनी अपनी राह ली। वह आदमी जङ्गल पार कर जब अपने घर पहुँचा तो कुछ ही दिन के बाद उसके पापों ने उसे खूब सताया। उसके अपने बच्चों ने ही उसे घर से निकाल दिया। अपने-पराए सब उससे अलग हो गए। प्राण प्रिय मित्र भी उससे कतरा कर आने जाने लगे।

फिर तो उस उस दुष्ट के लिए गाँव छोड़ कर जाने की नौबत आ गई। जाते-जाते वह एक घोर जङ्गल में पहुँचा और पापों का प्रायश्चित करने लगा। मित्र-द्रोह का ऐसा ही फल भोगना पड़ता है।

विजयसिंह भीमसिंह के हाथ से बच कर निकल भागा। उसके भी चार महीने हो गए। इन तीन-चार महीनों में ही विजय-लक्ष्मी बीसलपुर और कोसलपुर राज्यों के बीच चार-पाँच बार एक-दूसरे के हाथों में अदलती बदलती रही। अभी कोसलपुर वालों का ही हाथ ऊँचा था।

इसीलिए भीमसिंह बेलगाम घोड़े की तरह सरपट भाग रहा था। उसने कोसलपुर के अधीन रहने वाले कुछ सरदारों के साथ मिल कर नर्मदा नदी के तीरस्थ देवलपुर में अपना अड्डा जमाया।

उसी देवलपुर में गाँव के बाहर एक टूटी धर्मशाला में बैठे दस-बारह आदमी बातें कर रहे थे। आधी रात हो आई थी। इतने में वहाँ एक दूत आया और उनके बीच बैठे एक युवक से बोला-"विजय ! भीमसिंह अभी-अभी चार सैनिकों के साथ कहीं बाहर जा रहा है।"

यह सुनते ही विजयसिंह घबराकर तुरन्त उठा और अपने चार-पाच अनुचरों के साथ उस दूत के पीछे-पीछे चला गया। वह दूत उन्हें नर्मदा नदी के तीर से ही

ले जा रहा था। कुछ दूर जाने पर, मशाल की रोशनी में चलते हुए, एक छोटा दल उन्हें अपने सामने दीख पड़ा।

इन लोगों ने सोचा कि यह जरूर भीमसिंह का ही दल होगा। ऐसा सोच कर ये लोग कुछ रुके और देखने लगे कि वे कहाँ जाते हैं। कुछ दूर जाने के बाद वह आगे जाने वाला दल नदी-तट की सघन झाड़ियों के पास ठहर गया। विजयसिंह भी अपने साथियों के साथ कुछ पास पहुँच कर झाड़ियों की आड़ में रुका और देखने लगा कि वे अब क्या करते हैं। कुछ देर के बाद, उन्हें झाड़ियों की दूसरी तरफ से एक और दल आता हुआ दिखाई दिया। दोनों दलों के अगुओं का पहले परिचय हुआ, फिर वे कुछ बातें करने लगे।

विजय जहाँ खड़ा था, वहाँ से यद्यपि उनकी बातें साफ-साफ नहीं सुनाई पड़ती थी, फिर भी-"करुणा सब तरह से लायक लड़की है।", "शब्द-बेधी..... खुले आम सुविधा नहीं"-आदि कुछ बातें उसे सुनाई दे गई। कुछ देर के बाद उनकी बातें बन्द हो गई। भीमसिंह अपने दल के साथ पीछे मुड़ा और अपने निवास स्थान की ओर लौट पड़ा। विजयसिंह ने उसका पीछा किया।

भीमसिंह ने नर्मदा नदी के तट पर बने एक पुराने मकान में अपना डेरा डाल दिया था। उस मकान के तीन और ऊँची चहर दीवारी बनी थी। एक ओर तेज धार वाली नर्मदा वह रही थी, जो चहरदीवारी से भी कहीं अच्छी तरह उसकी रक्षा कर रही थी। यह मकान विजयसिंह के ध्यान में इसके पहले ही आ गया था। लेकिन इसके अन्दर जाने का कोई उपाय न देख कर वह चुप रह गया था। उनकी बातों से विजयसिंह ने सोचा-"शायद करुणा भी इसी मकान में लाई गई

होगी और जबर्दस्ती विवाह करने की तैयारी होने जा रही होगी। इसलिए समय रहते ही उस मकान पर छापा मार कर करुणा को छुड़ा लेने का सङ्कल्प विजय ने कर लिया।

इसलिए भीमसिंह और उसके अनुचर जब उस मकान के अन्दर चले गए, तब विजय ने उसके चारों ओर घूम कर छापा मारने का उपाय ढूँढा। तीनों तरफ पहरे का कड़ा प्रबन्ध था और उस पर छापा मारना सम्भव नहीं था। इसलिए उसने नदी की तरफ से ही घुसने का निश्चय किया। यह निश्चय होते ही वह अपने साथियों के साथ धर्मशाला की ओर लौट पड़ा।

लेकिन वह वहाँ से थोड़ी दूर भी नहीं गया होगा कि कुछ लोगों ने उसे रोका। जिससे विजय को विश्वास हो गया कि ये जरूर भीमसिंह के ही आदमी हैं। बस, तलवार निकाल कर, उस अँधेरे में जान की परवाह किए बिना ही, वह उन लोगों पर टूट पड़ा। इस तरह कुछ देर मुठभेड़ होने के बाद "तुम कौन" तो- "तुम कौन !"- का शौर शुरू हुआ और तब जाकर लोगों को अपनी-अपनी भूल मालूम हुई।

तब विजयसिंह को मालूम हुआ कि जिन के साथ वह लड़ रहा था, वह भीमसिंह या उसके आदमी नहीं, बल्कि चन्द्र-दुर्ग के मालिक और उसके आदमी हैं, जिसने पाल-पोस कर करुणा को बड़ा बनाया था। आखिर ये दोनों के दोनों भीमवर्मा के जानी दुश्मन निकले। दूसरे दिन सवेरे मिल कर सब बातों पर विचार करने और कोई उपाय ढूँढ़ने का निश्चय करके दोनों दल अपनी-अपनी राह चले गए।

दूसरे दिन सवेरे ही विजय और चन्द्र-दुर्गाधिपति नर्मदा नदी के तट पर मिले और बातचीत शुरू हुई। दोनों ही भीमसिंह के

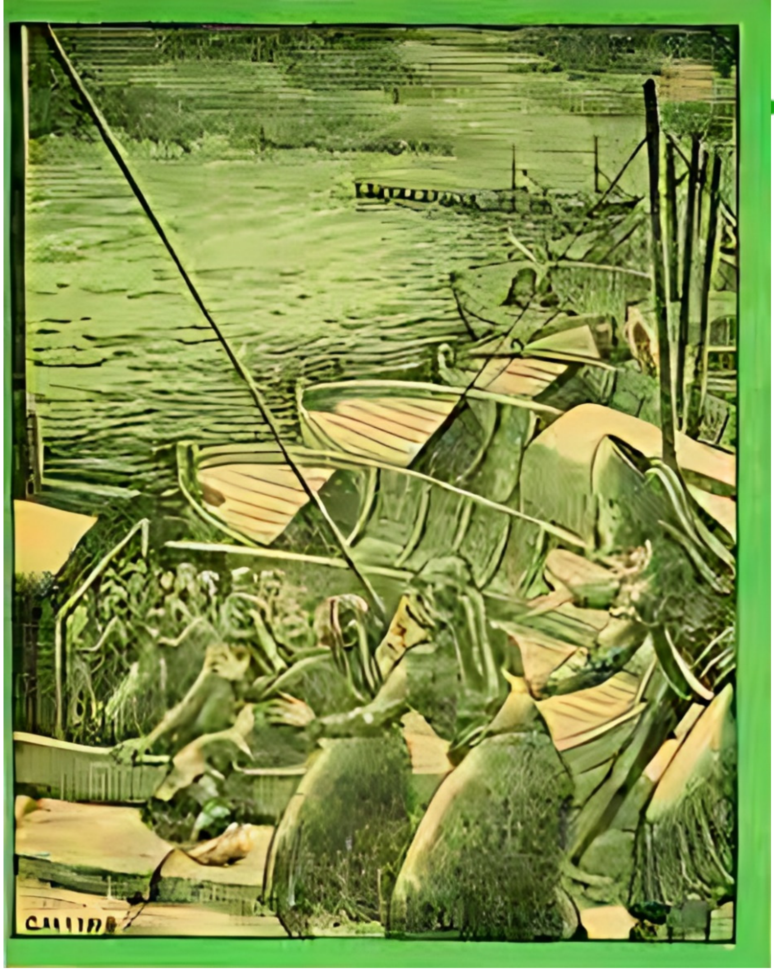

जानी दुश्मन थे, इसलिए मित्रता स्थापित करने में कोई देर न लगी। चन्द्र दुर्ग के मालिक को विजय के ऊपर बड़ा ही प्रेस और विश्वास पैदा हो गया। दोनों ने करुणा की रक्षा करने और उसी रात को नदी की तरफ से भीमसिंह पर धावा बोलने का निश्चय कर लिया। साथ ही साथ चन्द्रदुर्ग के मालिक ने विजय को यह भी वचन दिया कि विजय के साथ करुणा की शादी कर देने में उसे कोई आपत्ति नहीं है।

विजय के अनुचरों में नाथूसिंह नाम का एक अधेड़ आदमी भी था। उस नाथूसिंह को नदी नावों का बड़ा अच्छा अनुभव था। डेरे पर लौटने के बाद विजय ने नाथूसिंह से कहा- "भाई नाथूसिंह, क्या आज की रात कहीं से एक बड़ी नाव उड़ा ला सकते हो? एक जरूरी काम आ पड़ा है।" नाथूसिंह ने जवाब दिया- "यह कौन-सी बड़ी बात है? घाट की सब नावें हमारी ही तो हैं!"

घाट पर बहुत सी नावें लगी थी। उन सबों में एक नाव कुछ बड़ी थी और वह इनके बहुत काम की थी। उसी नाव को मन में रख कर नाथूसिंह ने विजय से वह बात कही थी। अन्धेरा होते ही चन्द्र-दुर्ग का मालिक अपने बीस-पच्चीस आदमियों के साथ वहाँ पहुँच गया। विजय तो वहाँ पहले से अपने बीस-पच्चीस आदमियों के साथ तैयार बैठा था।

सबसे पहले पाँच-छह आदमी घाट पर गए और चुपचाप उस नाव को ठेल कर किनारे पर लाए और उस पर चढ़ गए। फिर नाव पर सोए दो रखवालों के मुँह में कपड़ा ठूँस दिया और हाथ-पैर बाँध कर उन्हें कहीं दूर पर डाल दिया। उसके बाद नाथूसिंह ने पतवार पकड़ी और नदी की धार में नाव को तीर की तरह उड़ा ले चला।

आसमान में बादल घिर आए थे। नाथूसिंह ने आकाश की ओर देख कर कहा-"लक्षण कुछ अच्छे नहीं दीख रहे हैं।" चन्द्र-दुर्ग के स्वामी ने भी उसकी बात का समर्थन करते हुए कहा-"हाँ, लक्षणों से तो तूफान आने को सम्भावना दीखती है। साइत कुछ अच्छी नहीं मालुम होती है।"

"देखना है, कि अब क्या क्या गुल खिलते है !" विजय ने कहा और उसने अपने मन में सोचा-"तुफान क्या, अगर भूकम्प भी आ जाय तब भी आज की रात वह करुणा को छुड़ाए बिना नहीं रहेगा।"

पल-पल में अँधेरा बढ़ता जा रहा था। जब तक नाव भीमसिंह के निवास स्थान के करीब पहुँची, तब तक घोरान्धकार छा गया। आँखें फाड़ फाड़ कर देखने पर भी कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। हवा भी बिलकुल रुक गई थी। विजय ने आतुरता से कहा-"आ गए हम !" वह छटपटा रहा था- -कब नाव किनारे लगे और कब वह उस में से कूद पड़े !

किसी तरह नाव उस मकान के पास किनारे पर पहुँच गई। सब से पहले विजय तट पर कूद पड़ा। फिर

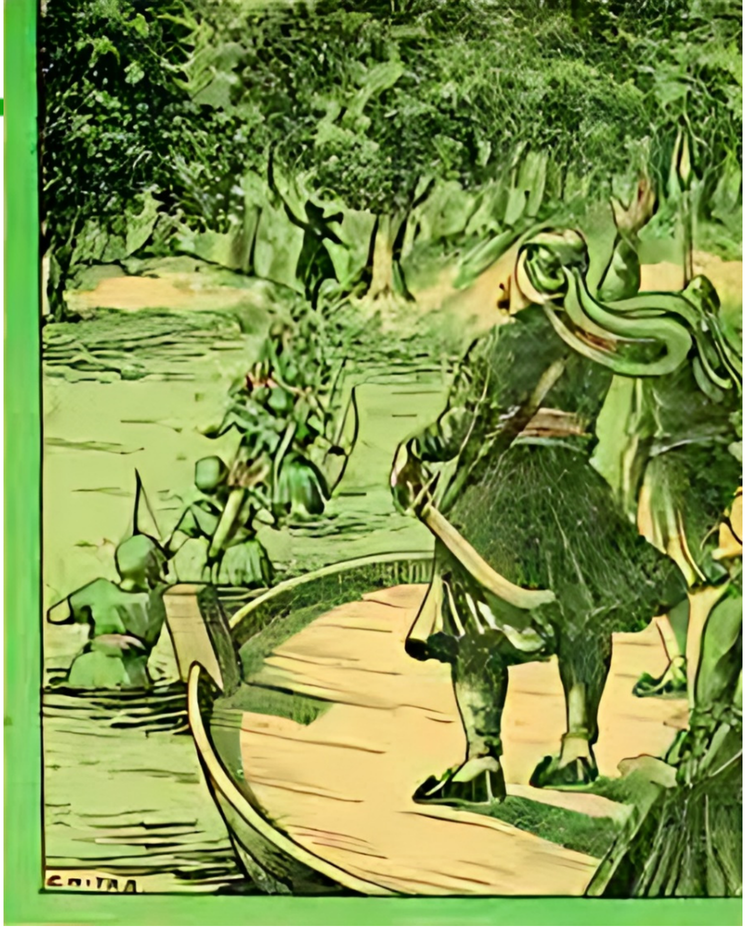

उसके पीछे और भी कई लोग कूदे। विजय ने मुड़कर कहा-"बाकी लोग सब नाव में ही रहो। पहले हम लोग देख आते हैं कि हालत कैसी है और किस तरह काम करना है।" यों चन्द्र-दुर्ग के मालिक के साथ बाकी लोग नाव में ही रह गए।

ढेर के ढेर बादल आकाश में जमा होने लगे और तारे भी गायब हो गए। सहसा आँधी चल पड़ी। विजयसिंह अपने साथियों के साथ पग-पग पर रुकता हुआ आगे बढ़ने लगा। उसे विश्वास था कि मकान के पीछे काई पहरेदार नहीं होगा। इसी से वह साहस के साथ चला जा रहा था।

कुछ भी क्यों न हो, विजयसिंह और उसके सहचर किनारे पर नाव के पास पहुँच गए। लेकिन नाव का कहीं पता न था। हवा की तेजी और लहरों के आघात के कारण वह किनारे से बहुत दूर चली गई थी। उसे किनारे लगाना नाथूसिंह के लिए मुश्किल हो रहा था। और वह अपनी पूरी शक्ति से उसे किनारे पर लाने की कोशिश कर रहा था।

पीछे से दुश्मन बढे आ रहे थे। मूसलाधार पानी गिर रहा था। हवा की तेजी जमीन पर पैर नहीं रखने देती थी। बीच-बीच में बिजली कौंध कर दुश्मन को उनका पता बता जाती थी।

सोचने-विचारने का मौका नहीं था। विजयसिंह और उसके साथी नदी में कूद पड़े और नाव की तरफ बढ़ने लगे। दुश्मन किनारे पर आकर खड़े हो गए और तैरने वालों के साथ-साथ नाव वालों पर भी बाणों की वर्षा करने लगे। नदी में तैरते हुए जिन्हें तीर लगे, वे जाने कहाँ बह गए। कुछ लोग नाव पर चढ़ते हुए तीर खाकर गिरे और धार में बह गए। नाव पर के कुछ लोग भी घायल हो गए। उनकी रक्षा का कोई उपाय नहीं था। वे

इतने में उसके एक साथी को ठोकर लगी। ठोकर खाकर वह ढालू की ओर लुढ़का। बस, मकान के ऊपर से सनसनाता एक तीर आया और विजय के एक साथी की देह में चुभ गया। जब विजय ने यह देखा तो आदेश दिया-"पीछे हटो!" इतने में तीरों की वर्षा होने लगी और विजय के आदमी पीछे की ओर भाग खड़े हुए। इतने में वर्षा और हवा एक-साथ वेग से शुरू हुई। उस तूफान के हाहाकार में भागने बालों और पीछा करने वालों का कोलाहल मिल कर एक बड़ा होहल्ला मचने लगा।

भी साहस के साथ बाण बरसाने लगे। लेकिन दुश्मनों के छिपने के लिए तो उधर चट्टानें थी और थी सघन झाड़ियाँ।

इन लोगों का धावा यों बुरी तरह विफल हो गया। आखिर किसी तरह जान बचा कर निकल जाने के लिए वे लोग मनौती मानने और भगवान को गोहराने लगे। तूफान के कारण सूखे पत्ते की तरह नाव थपेड़े खा रही थी। और अब डूबी, तब डूबी की हालत में पहुँच गई थी। अब नाव पर भी चीख-पुकार मचने लगी।

विजयसिंह ने हाँफते हुए कहा- "नाथू, नाव किसी तरह उस पार लगा दो !" लेकिन उस भयङ्कर तूफान में नाव को पार लगाना क्या हँसी-खेल था ?

इतने में एक तीर आकर चन्द्र-दुर्ग के मालिक को लगा। घायल होकर वह गिर पड़ा। लोग उसे उठा कर एक ओर ले गए। घाव गहरा था। जान जाने का भी डर था। चिन्ता में पड़ा विजय उसके पास जाकर खड़ा हो गया।

'बाबू, तुम किस पक्ष में हो ? कोसलपुर बालों के पक्ष में हो या बीसलपुर वालों के पक्ष में ?" चन्द्र दुर्ग के मालिक ने पूछा।

विजय ने जवाब दिया-"भीमसिंह कोसलपुर वाला है। वह मेरा और चण्डीदास का दुश्मन है। इसलिए आप हमको भी बीसलपुर वाले ही समझ सकते हैं।"

घायल गढ़पति फिर यों कहने लगा-"तो फिर सुनो। सच पूछो तो मैं करुणा के लिए इस नगर में नहीं आया था। करुणा यहाँ है, यह भी मुझे मालूम नहीं था ! मैं आया था दुश्मनों की शक्ति की थाह लेने ! वह काम कुछ हो गया है। लेकिन मैं बचूँगा या नहीं पहले तो इसी में मुझे शक है। फिर भी तुम्हें मैं एक आदमी का नाम

बताए देता हूँ। अगर मैं मर गया तो तुम उस आदमी के पास जाकर सब बातें कहना। वह बीसलपुर के अधीश्वर से तुम्हारा परिचय करा देगा। कौन कहे कि तुम्हारा भाग्य कैसा है ?"

विजय ने पूछा-"फिर करुणा की हालत क्या होगी?" यह सुन कर गढ़पति ने कहा-"उसके बारे में मैं अब क्या कर सकता हूँ ? जो कुछ हो सकता था, आज कर दिया। अब जो करना हो, तुम्ही को करना पड़ेगा।" इस पर विजय बोला-"आप घबराइए नहीं। हम लोग अब दुश्मनों के निशाने से दूर निकल आए हैं। थोड़ी ही देर में किनारे से लगा जाएँगे। आपका घाव भी अच्छा हो जाएगा।"

पीड़ा से कराहते हुए गढ़पति ने कहा-"चाहे जो हो, मेरी चिन्ता अब मिट गई।" सचमुच थोड़ी ही देर में वे लोग किनारे पर पहुँच गए। तभी पूर्व में पौ फटने लग गई थी। अपने साथियों के साथ टूटे हृदय से विजयसिंह नाव से उतरा। चन्द्र-दुर्ग के घायल स्वामी को उसके आदमी उठा कर डेरे पर ले गए।

करुणा को छुड़ाने का वह प्रयत्न यों निष्फल हो गया। लेकिन इससे एक फायदा यह हुआ कि विजयसिंह को चन्द्र-दुर्ग के स्वामी का स्नेह प्राप्त हो गया। इसीलिए विजय ने दृढ़ सङ्कल्प किया-"अब चाहे जो हो, करुणा को छुड़ाने के लिए मुझे किसी की सहायता की जरूरत नहीं। मैं अब अपनी ताकत पर ही भरोसा करूँगा!"

[अभी और है।]

नेपाल देश का राजा धर्मसिन्धु बड़ा ही परोपकारी था। वह बड़ा त्यागी भी था। वेश बदल कर दूर-दूर तक पैदल घूमने का उसे बड़ा शौक था।

एक बार धर्मसिन्धु यों वेश बदल कर घूमता-घामता पहाड़ी प्रदेश में जा पहुँचा। और कुछ दूर जाने पर उसे एक गहरा गड्ढा मिला। उसके बाद उसे कहीं कोई रास्ता नहीं दीख पड़ा।

वहीं खड़ा खड़ा धर्मसिन्धु सोच ही रहा था कि उस गड्ढे की बगल से एक आजानुबाहु आकर उसके सामने खड़ा हो गया। वह सफेद कपड़े पहने था और हाथ में मजबूत लाठी लिए था। खूब बलवान, सुन्दर और वाक् चतुर जान पड़ता था। साधारण वेश में दीख पड़ने वाला वह बड़ा आदमी धर्मसिन्धु के सामने आकर बड़े प्यार से कहने लगा- "वत्स, थके-माँदे जान पड़ते हो ! कौन हो ? कहाँ से आ रहे हो ? कहाँ जाओगे ? आओ, वत्स मेरे साथ चले आओ। इसी तरह न जाने कितने लोग मौके-बे-मौके सफर करते रहते हैं। ऐसे बेचारों को रात में जगह न दूँ, तो उनकी क्या हालत हो। आओ, आओ- बेफिक्र मेरे साथ चले आओ !"

धर्मसिन्धु ने अपने सफर की बात उस से कही। सब कुछ सुन कर उसने कहा-"अरे, बाबू ! रास्ता भूल कर बहुत दूर आ गए हो। ऐसे समय में जङ्गल-पहाड़ को लाँघ कर जाना किसके बूते की बात है ? लेकिन चिन्ता क्या है ? चल कर मेरे साथ भोजन करो। आराम का बिछौना दूँगा। उस पर सुख की नींद सो जाना भला। सवेरा होते ही अपनी राह चले जाना।"

राम प्रकाश

यों एक भला आदमी जब स्वागत कर रहा हो, तब इन्कार करना मुर्खता का काम होगा-- यह सोच कर धर्मसिन्धु उसके पीछे-पीछे चला गया।

यों दोनों जब पहाड़ पर चल रहे थे, तब नीचे गड्ढे में से कोई ध्वनि सुनाई पड़ी। वह आवाज थी व्यापारियों के एक झुण्ड की। वे लोग गधों पर सामान लाद कर आ रहे थे। उनकी आबाज कानों में पड़ते ही उस भले आदमी ने धर्मसिन्धु से कहा-"अभी आया" और उनके पास चला गया।

उनके पास जाकर उसने बड़े ही प्रेम से कहा-"भाइयो, इतनी रात गए यह सफर कैसा? आओ, मेरे साथ चले आओ। मेरे घर में कुछ मुँह जुठाकर सो रहना और सवेरे अपनी राह चले जाना।... आज बड़ा ही शुभ दिन है। बड़ा ही पुण्य काल है। कितने ही अतिथियों की सेवा करने का अवसर मुझे मिला है।"

वह भला आदमी जब व्यापारियों से यों बातें कर रहा था, उसी समय धर्मसिन्धु को वहाँ एक बूढ़ा दीख पड़ा। वह लकड़ी का गट्ठर उठाने में बेहाल हो रहा था। उसकी मदद करने के इरादे से धर्मसिन्धु उसके पास गया। धर्मसिन्धु को देख कर उस बूढ़े ने कुशल क्षेम पूछा।

धर्मसिन्धु ने अपनी राम-कहानी उसे कह सुनाई। फिर कहा-"दादा, अभी-अभी एक दयालु पुरुष मिले थे और बड़े प्यार से आज रात अपने यहाँ रहने को बुला रहे थे।" यह बात सुन कर बूढ़े ने सिर झुका लिया और फिर एक लम्बी साँस छोड़ी।

"अरे रे, तुम्हें माया जाल में फँसा लिया है उसने। तुम्हारे जैसे भोले-भाले आदमी को यों फँसते देख कर मेरा हृदय दर्द करने लगता है। तुम जिसे दयालु और भला

आदमी समझ रहे हो, असल में वह भारी बदमाश और धूर्त है, याद रखना। उसने जिस सुखद सेज की बात कही है, यह सेज नहीं माया जाल है।" कह कर उसने फिर से दीर्घ साँस छोड़ी।

धर्मसिन्धु को इस से सन्तोष नहीं हुआ। उसने आतुरता से पूछा-"उस धूर्त के बारे मैं कुछ और साफ-साफ कहो।" यह सुन कर बुढ़े ने यों कहना शुरू किया--

"भाई, वह तो एक राक्षस है। नाम उसका धूर्तकेतु। मन-माने सोना तैयार करने की लालसा से इसने 'असुर शक्ति' नामक एक देवी की अराधना की। उसकी भक्ति भावना को देख कर वह 'अपूर शक्ति' उसके सामने प्रत्यक्ष हुई।

"केतु, तुम्हारी भक्ति मे प्रसन्न होकर आई हूँ। अपनी इच्छा पूरी करना चाहते हो, तो देखो उस कोने में एक पलङ्ग पड़ा है। उसे ले जाओ। उसका नाम है 'भालू की सेज'। यह भालू के रोएँ से बना हुआ महिमामय पलङ्ग है। अगर ठीक इस के बराबर वाले की बलि जिस दिन तुम मुझे दे दोंगे, उस दिन तुम्हारी इच्छा पूरी हो जाएगी।" ऐसा कह कर वह देवी अदृश्य हो गई।

धूर्तकेतु खुश होकर वह पलङ्ग यहाँ ले आया और यह मकान बनवा कर यहाँ रहने लगा। इस गड्ढे के पास ताक में लगा रहता है और आने-जाने वाले राहगीरों को मेहमानबाजी का लोभ दे कर उन्हें फँसाया करता है जो उसकी बातों में फँस जाते हैं, उन्हें ले जाकर वह उस पलङ्ग पर सुलाता है। मगर सोने वाले की लम्बाई पलङ्ग से बड़ी हुई तो उनके घुटनों को बाँध छान कर छोटा बनाने की कोशिश करता है। और जो पलङ्ग से छोटे पड़ जाते हैं,

उन्हें खींच-तान कर वह बराबर बनाना चाहता है। इस प्रकार अनेक आदमी उसके हाथों अकथनीय कष्ट उठा रहे हैं। पलङ्ग के ठीक बराबर एक में ही था..." कह कर वह रुक गया।

यह देख कर धर्मसिन्धु बोला-"दादा, फिर बलि होने से तुम कैसे बच गए?" इस पर बूढ़ा यों कहने लगा--

"बाबू, बहुत दिन पहले में इसी तरह चलता चलता यहाँ आ पहुँचा। धूर्तकेतु बड़ी आव-भगत के साथ मुझे अपने मकान में ले गया। बढ़िया भोजन दिया। फिर उस पलङ्ग पर आराम से सोने की बात कह कर खुद बाहर चला गया। मैं मजे में सो रहा। मेरी लम्बाई उस पलङ्ग से एक हाथ ज्यादा थी। यह देख कर मैं अचरज में पड़ गया। इससे मुझे नींद नहीं आई। तब मैंने क्या किया कि पैताने की ओर तकिया डाल कर और सिरहाने की ओर पैर फैला कर सो गया। बस, मेरी लम्बाई और पलङ्ग की लम्बाई बराबर हो गई। यों मुझे पलङ्ग का रहस्य मालम हो गया। नींद न आने पर भी आँखे बन्द किए मै यों ही पड़ा रहा।

आधी रात के वक्त धूर्तकेतु आया और देखा कि मैं पलङ्ग के ठीक बराबर हूँ। इतने दिनों के बाद उसे बलि के लायक आदमी मिल गया; यह सोच कर वह खुशी से उछल पड़ा। उस दिन से वह मुझे बड़ी मेहरबानी के साथ रखने लगा। फिर बलि देने की शुभ घड़ी उसने ठीक की। यह बात उसके नौकर से मुझे पहले ही मालूम हो गई थी। बलि देने के पहले आधी रात को आकर उसने मुझे फिर एक बार देखा। उस समय मैं पहली बार की तरह साधारण ढङ्ग से सोया हुआ था। देखने से में एक हाथ लम्बा जान पड़ा। यह देखकर धूर्तकेतु

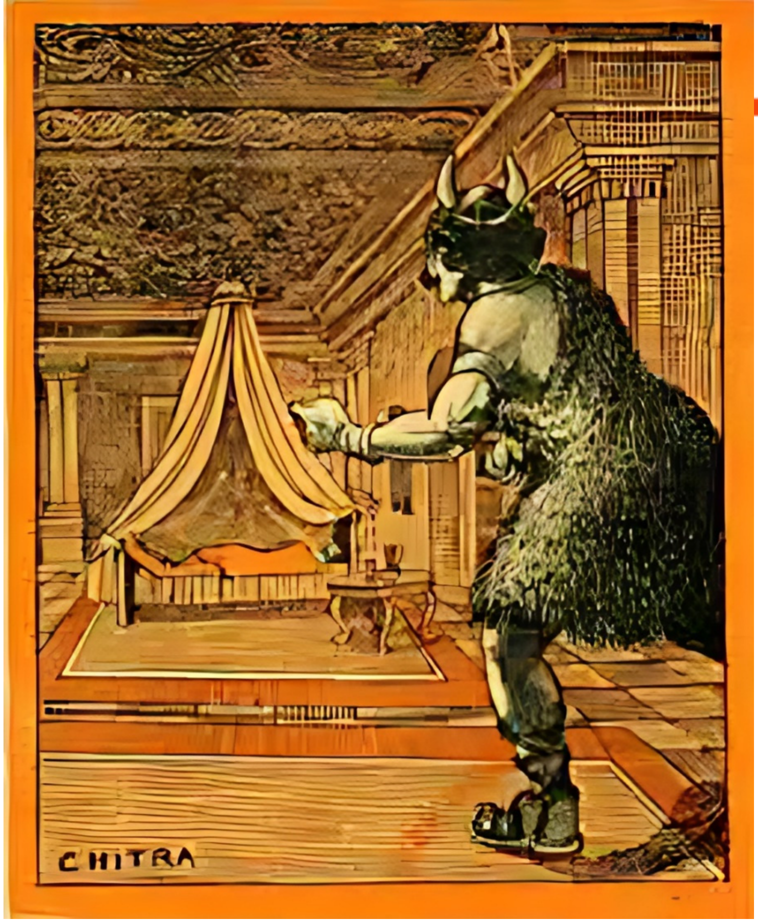

घबरा उठा। उसे कुछ भी नहीं सूझा। पिछली रात को तो यह पलङ्ग के बिलकुल बराबर था। और आज इतना बड़ा कैसे हो गया है ? उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया। उतावला होकर वह पलङ्ग तो ले आया था, पर उसका रहस्य उसे कुछ भी मालूम नहीं था। न तो इसने कुछ पूछ-ताछ की, न उस देवी ने ही उसे कुछ बताया। अब वह मुझ से उसका रहस्य पूछने लगा। अनेक कष्ट दिए उसने मुझे। फिर भी मैंने अपनी जिद्द नहीं छोड़ी। कोई फायदा न देख कर वह ऊब उठा और मुझे गुलाम बना कर रखने लगा। जितना भी काम वह लेना चाहे, मैं करता हूँ। जितना भी पानी भरवाना चाहे, भर देता हूँ। जितना भी लकड़ी ढुलवाना चाहे, ढो देता है। पर वह रहस्य नहीं बताता हूँ। और आज तक बलि देने लायक कोई दूसरा आदमी उसे नहीं मिला है।"

इतने में व्यापारियों को साथ लिए धूर्तकेतु के आने की आहट सुनाई पड़ी। यह देख कर बूढ़े ने धीरे से धर्मसिन्धु के कानों में कुछ कह दिया। धर्मसिन्धु खुशी से उछल पड़ा।

उस दिन धूर्तकेतु के जाल में जितने लोग फँसे थे, उन सबों में धर्मसिन्धु ही सुन्दर और लम्बे-चौड़े कद का था। इसलिए धूर्तकेतु ने धर्मसिन्धु को खूब बढ़िया खाना खिलाया और बड़े आदर से ले जाकर उसे पलङ्ग पर सुला दिया। धर्मसिन्धु जैसे कुछ भी नहीं जानता हो, भोलेपन के साथ पलङ्ग पर जाकर उलटा सो गया !

आधी रात को धूर्तकेतु ने आकर देखा तो धर्मसिन्धु पलङ्ग के ठीक बराबर था। इस खुशी में वह उन ब्यापारियों की बात ही भूल गया। उस दिन से वह धर्मसिन्धु पर ही ध्यान केन्द्रित करके उसका अनेक तरह से

लालन-पालन करने लगा। उसके ऊपर विश्वास करके उसने उसे स्वच्छन्द छोड़ दिया। धर्मसिन्धु भी अपने मालिक के प्रति विश्वास ही दिखाता आया। इतने दिनों के बाद उसे अपने इष्ट देव के सामने बलि देने लायक आदमी मिला, इस खुशी में धूर्तकेत दीन-दुनियाँ की सुधि भूल गया।

इस बीच धर्मसिन्धु उस बूढ़े से मिलता और सलाह-मशवरा करता रहा। दोनों एक निश्चय पर पहुँच गए।

उस निश्चय के अनुसार धर्मसिन्धु ने एक दिन धूर्तकेतु से मीठी-मीठी बातें की और उसके पैरों के पास अपना सिर रख कर उस पलङ्ग पर सोने की तैयारी कर डाली। धूर्तकेतु ठीक उस पलङ्ग के बराबर हो गया।

धूर्तकेतु को सोते सोते पलङ्ग के साथ उस अपुर-शक्ति के मन्दिर में ले जाने का सब इन्तजाम पहले ही हो गया था।

'शक्ति' प्रत्यक्ष हुई। पलङ्ग के ठीक बराबर सोए धूर्तकेतु को बूढ़ा और धर्मसिन्धु बलि देने को तैयार हो गए। लेकिन उस 'शक्ति' को अपने भक्त के ऊपर दया आ गई। इसलिए उसने उसे और एक बात बता कर बिदा कर दिया। अपने वचन के मुताबिक उसने धर्मसिन्धु को सोना बनाने का उपाय बता दिया।

धर्मसिन्धु ने उस मकान पर दखल जमा लिया। और सोना बना कर ढेर लगा दिया। उस बूढ़े को उसने अपना गुरु मान लिया। फिर धूर्तकेतु की तरह छल-कपट से नहीं, बल्कि सच्चे दिल से, परोपकार की भावना से, वह उस बीहड़ रास्ते से आने-जाने वालों का स्वागत-सत्कार करके अपना जीवन सार्थक करने लगा।

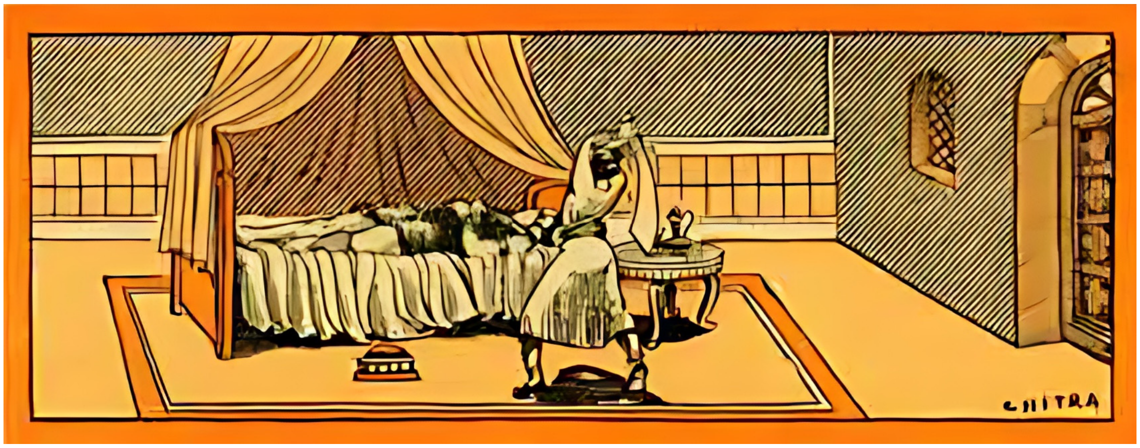

मदुरा नगरी में जब पाण्ड्य पांड्य राजाओं का राज्य था, तब 'बादवुरार' नामक एक शिव-भक्त वहाँ का मन्त्री था।

एक दिन राजा ने 'बादवुरार' को बुला कर कहा-"मन्त्री, सारे चोल राज्य में घूम कर देखो, और पैसे की चिन्ता किए बगैर ऐसे घोड़े खरीद लाओ जिनसे हमारी प्रतिष्ठा हो।"

"बहुत अच्छा !" कह कर बादवुरार वहाँ से चल पड़ा। चलते-चलते एक जगह मौलश्री पेड़ के नीचे बैठा हुआ एक बूढ़ा ब्राह्मण उसे दीख पड़ा।

उस तेजोद्दीप्त ब्राह्मण का मुख-मण्डल देखते ही 'बादवुरार' के मन में हलचल मच गई। वह उसके सामने दण्डवत् हो गया और साष्टाङ्ग प्रणाम करने के बाद बोला-"बचपन से मेरी इच्छा मुक्ति पाने की रही है। अब आपको देख कर मन में ऐसा विश्वास होता है कि आप से ही वह दुर्लभ चीज मुझे मिलेगी। अतः आप मुझे भव-सागर से पार उतरने का उपाय बता कर पुण्य-सञ्चय करें।"

यह सुन कर वह बूढ़ा ब्राह्मण अपने असली शिव-रूप में प्रत्यक्ष हुआ और भक्त बादवुरार को मुक्ति का मार्ग बता कर अदृश्य हो गया।

उसी क्षण से बादवुरार के मन में कविता करने की इच्छा हुई और अपने इष्ट देव की स्तुति में यह आशु-कविता रचने लग गया।

'बादवुरार' की कविता से खुश होकर एक दिन शिवजी उसके सामने आ खड़े हुए।

"भक्त शिरोमणि, तुम्हारे मुँह से जो एक-एक शब्द निकलता है, वह एक-एक

गोपालकृष्ण रेड्डी

माणिक्य के बराबर है। इसलिए दुनियाँ में तुम 'माणिक्य वाचकर' के नाम से प्रसिद्ध होगे।" ऐसा कह कर शङ्कर अन्तर्धान हो गए।

उसके हाथ में घोड़े खरीदने के लिए जो राज-धन था, उससे उसने एक शिवालय बनवा दिया और सब कुछ भूल कर अपने इष्ट देव की आराधना करने लगा। इतने में राजा के दूत मन्त्री को खोजते खोजते वहाँ आ पहुँचे। और 'बादवुरार' को देख कर उन्होंने तुरन्त दरबार में हाज़िर होने का हुक्म उसे सुना दिया।

'वाचकर' राजा के आदमियों के साथ मदुरा नगरी पहुँचा। उसे मालूम था कि राजाज्ञा के पालन में इतनी देर हुई है और वह खाली हाथ जा रहा है। ऐसी हालत में राजा का क्रोध उस पर पड़ेगा ही। हुआ भी वही। मन्त्री को खाली हाथ देख कर राजा के गुस्से का ठिकाना नहीं रहा। उसने तुरन्त 'वाचकर' को बन्दी खाने में डाल दिया और अनेक तरह से सताया।

भक्त के कष्टों को देख कर महादेव का दिल पिघल गया। उन्होंने 'बाचकर' की रक्षा के लिए एक अद्भुत उपाय सोचा। कुछ सियारों को उन्होंने बढ़िया घोड़ों में बदल दिया। फिर खुद एक सौदागर का बेश बना कर उन नकली घोड़ों के साथ राजा के दरबार में हाजिर हुए।

उन घोड़ों को देखते ही राजा आश्चर्य में पड़ गया।

सौदागर ने राजा से कहा-"महाराज ! में माणिक्य वाचकर का मित्र हूँ। उसने मुझे बढ़िया घोड़े खरीदने का काम सौंपा था। घोड़े आपके सामने हैं, महाराज।"

जल्दीबाजी में राजा ने मन्त्री पर जो अत्याचार किया था, इसके लिए वह पछताया

और तुरन्त उसे कैद से छोड़ देने का हुक्म दे दिया।

राजा के नौकरों ने ले जाकर घोड़ों को अस्तबल में बाँध दिया। लेकिन रात होते ही नकली घोड़ों ने अपना असली रूप लिया और 'हुआहुआ' करके अस्तबल के घोड़ों को नोचने-काटने लग गए। यों राजा की अश्व-शाला में भारी तहलका मचा कर वे सियार जङ्गल में भाग गए।

यह अजीब खबर सुनते ही राजा आग-बबूला हो गया। मन्त्री धोखा दे रहा है, यह सोच कर राजा पहले से भी ज्यादा उसे सताने लग गया।

अपने भक्त को यों अकारण असह्य कष्ट भोगते देख कर भगवान शङ्कर उग्र हो उठे और उन्होंने अपने माथे से गङ्गा को भूतल पर उतार दिया। देखते-देखते गङ्गा नदी ऐसी उमड़ी कि मदुरा नगरी के बह जाने का खतरा हो गया। ऐसे सङ्कट के समय राजाज्ञा से नगर की सारी जनता उठ खड़ी हुई और मिट्टी खोद-खोद कर गङ्गा नदी के बाँध को मज़बूत बनाने लगी।

उधर बाँध को तोड़ने के लिए नदी गरजती आ रही थी, इधर नगर के बाल-बच्चे, बूढ़े सयाने, औरत-मर्द सभी टोकरी उठाए उस पर मिट्टी

डालते जा रहे थे। सिर्फ एक बुढ़िया अपने घर में चुपचाप बैठी देख रही थी और मन ही मन पछता रही थी कि ऐसे समय वह कुछ भी नहीं कर रही है !

उसी समय एक छोटा लड़का वहाँ आया और बुढ़िया की उदासी देख कर बोला-"दादी, तुम कोई चिन्ता न करो। राजा तुम्हें कुछ नहीं कहेगा। चलो, तुम्हारा काम भी में ही कर दूँगा।"

लड़के की बात सुनते ही बुढ़िया खुश हो गई और रोटियों की गठरी सिर पर रख

कर वह उसके साथ चल पड़ी। नदी के पास पहुँच कर यह लड़का बुढ़िया की रोटी खाते खेलने कूदने लगा। दूसरे लड़के भी उसके आगे-पीछे हो गए और वह सबों के साथ मजाक-मखौल करने लगा।

राजा ने उसे देखा । ऐसे सङ्कट के समय, जब सब लोग आतुर होकर काम कर रहे थे, यह लड़का यों खेले? राजा को गुस्सा आ गया। उसके हाथ में एक पतली छड़ी थी। खींच कर उसने उस लड़के की पीठ पर दे मारी। लेकिन लड़के पर छड़ी पड़ते ही एकाएक सब लोग चौंक उठे और तिल मिला कर अपनी-अपनी पीठ सहलाने लगे। यहाँ तक कि राजा भी चौंक उठा और वह भी व्यग्रता से अपनी पीठ सहलाने लग गया। ऐसा मालूम हुआ, जैसे राजा की वह छड़ी एक साथ ही सबों की पीठ पर पड़ी हो। पीठ पर छड़ी पड़ते ही राजा की आँखें खुल गई। राजा समझ गया कि यह लड़का और कोई नहीं, खुद भगवान ही हैं। बस, वह उनके पैरों पड़ गया।

इतने में यह लड़का लापता हो गया। इसके साथ वहाँ के लोग एक और भी बात कहने लगे-"हम इतने लोग मिट्टी डालने में लगे थे; पर बाँध बँध नहीं रहा था। अब टूटा, तब टूटा हो रहा था। इतने में वह खिलाड़ी लड़का खेलते-खेलते वहाँ आया और अपने हाथ से एक मुट्ठी मिट्टी उठा कर नदी की लपकती लहरों में डाल दी। फिर तो, जैसे सपेरे ने अपनी लकड़ी साँप को सूँघा दी हो। बस, बाढ़ रुक गई और मदुरा नगरी डूबने से बच गई।"

यह अद्भुत बात कानों में पड़ते ही राजा और भी अचरज में आ गया। उसने

पण किया-"जब तक उस लड़के को नहीं देखूँगा, यहाँ से हिलूँगा नहीं।"

उसी समय राजा को आकाश वाणी सुनाई पड़ी:-

"तुम जिसे कैद में डाल कर सता रहे हो; वह मेरा परम भक्त है। भक्त ही नहीं, मेरा शिष्य भी है! अब भी तो चेत जाओ।"

राजा जल्दी-जल्दी माणिक्य वाचकर के पास पहुँचा। फिर अनुनय-विनय करके अपनी गलतियों के लिए उससे क्षमा चाही। और तुरन्त उसे कारागार से मुक्त कर दिया।

बाचकर तिरुप्पन्दुरै में निश्चिन्त होकर शिवजी की आराधना करने लगा। फिर उसे महादेव का आदेश हुआ कि "चिदम्बरम चले जाओ।" बस, बाचकर चिदम्बरम चला गया। वहाँ एक जैन साधु अपने धर्म का प्रचार कर रहा था। बाचकर और उस जैनी साधु के बीच खूब वाद-विवाद हुआ। लेकिन जब वह जैन साधु बाद-विवाद में जीत न सका, तब बोला-"अच्छा! तुम अगर चोल-राज्य की गूँगी राजकुमारी को वाचाल कर दो तो मैं अपनी हार मान लूँगा।"

जैन साधु की यह बात सुन कर वाचकर कुछ असमञ्जस में पड़ गया। लेकिन तुरन्त शिव का ध्यान करके उसने उसकी शर्त मञ्जूर कर ली और उसके सारे प्रश्नों का जबाब उसी गूँगी राजकुमारी के मुँह से दिलवा दिया।

उस गूँगी के मुँह से वैसे मुश्किल सवालों का सही-सही जवाब सुन कर सब लोग अत्यन्त चकित रह गए। यह देख कर वह जैन साधु उठा और वाचकर के पैरों पर पड़ गया। फिर वह उनका परम प्रिय शिष्य हो कर शैव धर्म का प्रचार करने लगा।

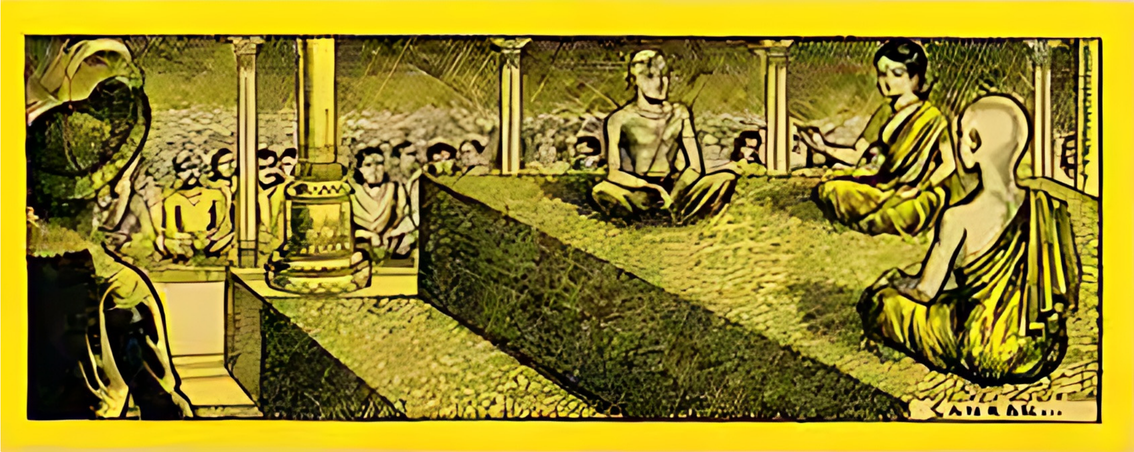

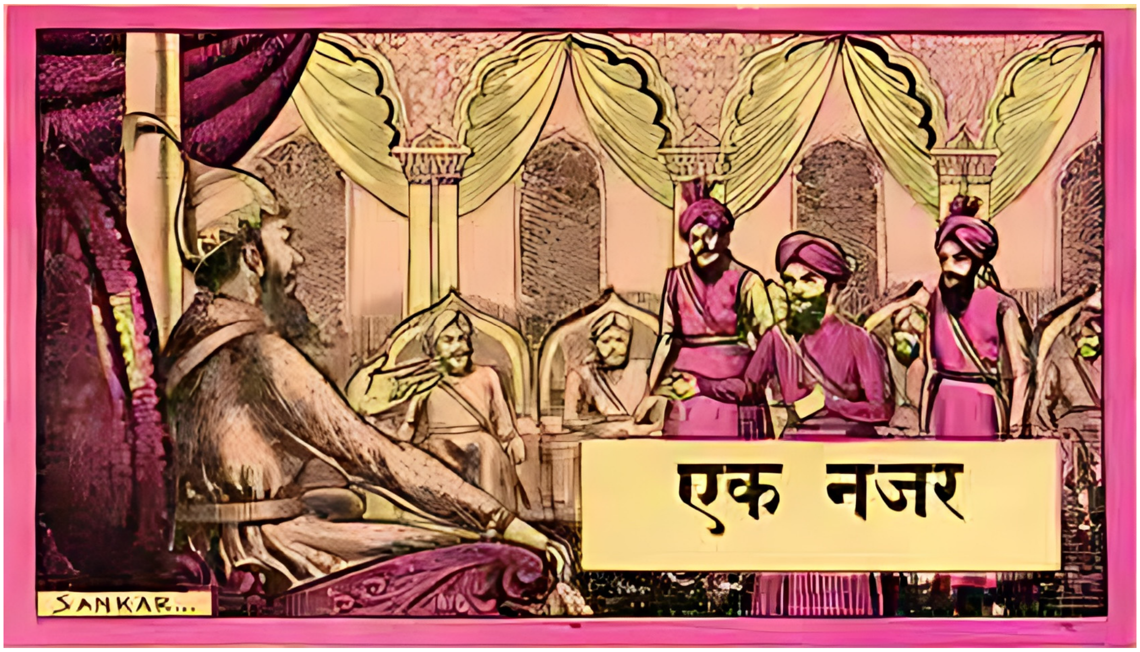

गुरु गोबिन्द सिंह एक रोज अपने दरबार में बैठे थे कि नौकर एक आदमी को पकड़ कर उनके सामने ले आया और कहने लगा-"हुजूर! इस आदमी का नाम है कन्हैया। यह बहुत बड़ा बदमाश और नमकहराम है। इसी से हुजूर के सामने इसे हाजिर कर रहा हूँ।"

कन्हैया प्रतिष्ठा-प्रिय, उदार तथा सहृदय आदमी था। यह बात गुरु गोबिन्द सिंह को खूब मालम थी। फिर भी गुरुजी ने उस नौकर से पूछा-"इसने क्या गुनाह किया है ?"

नौकर ने जोश के साथ कहा-"हुजूर! हमारे दल के लोग जब दुश्मनों को काट काट कर गिरा रहे थे, तब यह मरते हुए एक मुसलमान सिपाही के मुँह में पानी डाल रहा था। देखिए, तो इसका स्वामी-द्रोह !"

यह बात सुनकर गुरुजी ने कन्हैया से पूछा-"कहो, भाई! तुम इसका क्या जवाब देते हो ?"

कन्हैया यों कहने लगा-"महाराज ! जब मैं रणभूमि में होता हूँ, तब हिन्दू सेना और मुसलिम सेना का भेद मेरी नज़र में नहीं रहता है। कोई भी घायल हो गया हो, तो वह मेरे लिए भगवान ही बन जाता है। किसी भेद-भाव के बिना यथाशक्ति मैं घायलों की सेवा करता रहता हूँ। यही मेरा अपराध है, हुजूर !"

अमृत से भी यह मीठी बोली सुन कर गुरु गोविन्दसिंह को अपार खुशी हुई और कन्हैया को बुला कर उन्होंने उसे आशीर्वाद दिया।

इतना ही नहीं, अपनी पेटी से गुरुजी ने एक डब्बा निकाला और उसके हाथ में देकर कहा-"भाई, पानी ही नहीं, जो भी सिपाही घायल हो जाय, जात-पाँत का विचार किए बगैर यह तेल भी उसके शरीर में मल देना जिससे उसके घाव जल्दी भर जाय। तुम खुद समझदार हो। फिर भी मेरी एक बात याद रखना। हमारे इस युद्ध में हिन्दू और मुसलमान नहीं लड़ रहे हैं। आदमी आदमी नहीं लड़ रहे हैं। अधर्म पर विजय पाने के लिए खुद धर्म देवता लड़ रहे हैं। नहीं तो हम में किसी तरह का भेद-भाव नहीं रहता। क्योंकि हम सब एक हैं और एक ही ईश्वर की सन्तान हैं।

यों गुरु गोविन्दसिंह ने उसे उपदेश दिया। गुरु की आज्ञा सिर आँखों पर रख कर कन्हैया ने वह तेल का डब्बा उठाया और मानव सेवा के लिए फिर युद्ध-भूमि में पहुँच गया।

इस नए शिष्य को देख कर गुरुजी की और दूसरे शिष्यों की भी आँखें खुली और उन्होंने गुरुजी के उपदेश को अपने जीवन का लक्ष्य-मन्त्र मान लिया।

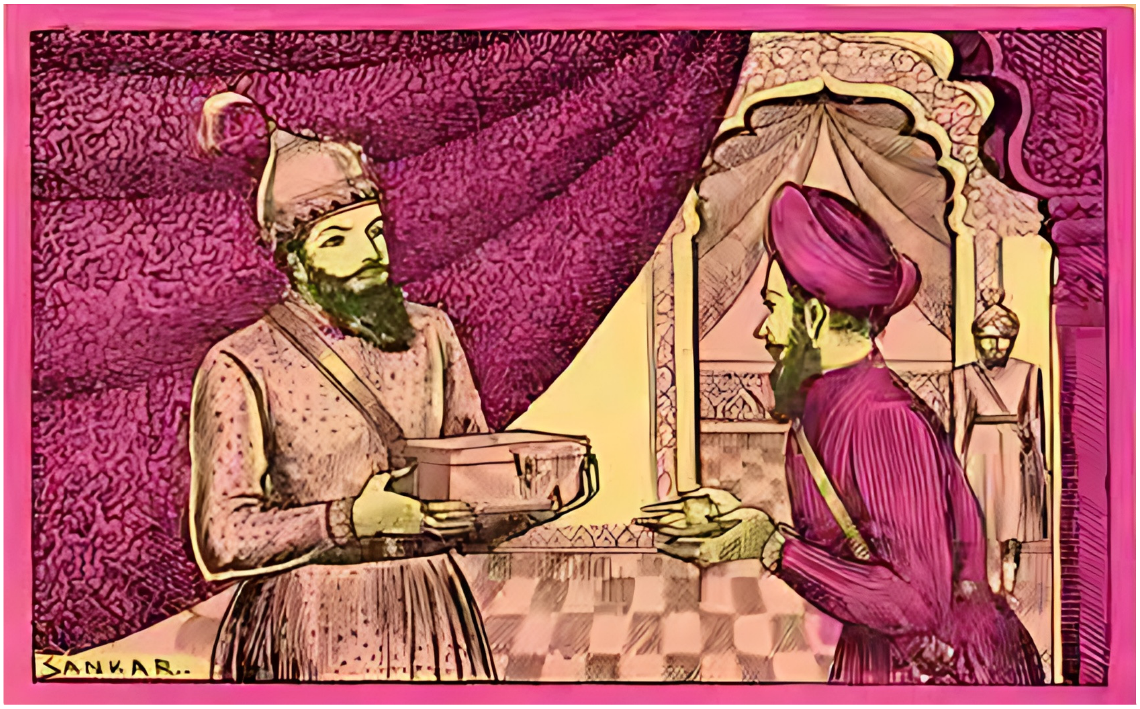

मारवाड़ राज्य का राजा था जयदेव। एक दिन उसके दरबार में एक भाट आया। उसने राजा की तारीफ में अनेक कविताएँ सुनाई।

राजा उस की कविताएँ सुन कर खुश तो बहुत हुआ। उसका आदर-सत्कार भी किया। लेकिन जयदेव को असल में कवियों और माटों से कोई खास सहानुभूति नहीं थी।

इसीलिए उसने उस भाट को, इनाम इकराम देना तो दूर रहा, उल्टे उसने उसका अपमान करना शुरू कर दिया।

उस भाट ने गुस्से से राजा को गाली देते हुए सीधे हरवंशों की राजधानी 'बुमोडा पट्टन' की राह पकड़ी। नगर में पहुँच कर वह किले के गुम्बद के पास राजा से मिलने के मौके की ताक में बैठ गया। राजा का नाम था आलूहर। वह शिकार खेल कर लौट रहा था।

कुछ देर के बाद राजा आलूहर शिकार खेल कर लौटा। वह किले के अन्दर घुस ही रहा था कि उस भाट ने राजा पर आशीर्वादों की झड़ी लगा दी।

आलूहर ने खुश हो कर कहा-"माँगो, क्या चाहिए तुम्हें ?" राजा ने सोचा कि यह भाट धन-दौलत, जमीन जायदाद के सिवा और माँगेगा क्या? लेकिन उस भाट ने माँगा-"महाराज, आप अपनी पगड़ी मुझे दे दीजिए।" यह सुन कर राजा को बड़ा अश्चर्य हुआ।

"मेरी पगड़ी लेकर तुम क्या करोगे? तुम्हें तो माँगना चाहिए धन-दौलत। वह सब कुछ न माँग कर कपड़े का एक टुकड़ा माँग रहे हो, कैसे पागल हो तुम !" यह सुन कर वह भाट बोला-"महाराज, आप की पगड़ी पहन कर घूमने की मेरी बड़ी

मुनीश श्रीवास्तव

ख्वाहिश है। इसे पहन कर मैं देश विदेश घूमूँगा और आप की कीर्ति फैलाऊँगा।"

आलूहर बात का धनी था। उसने भाट को वचन दे दिया था। इसलिए झट अपने माथे से पगड़ी उतार कर उस के हाथ में रख दी। हीरे-जवाहरों से जड़ी वह चमकदार पगड़ी सिर पर रख कर वह भाट शान के साथ अकड़ता हुआ चला गया।

उसको देख कर लोगों ने कहा- "जरूर यह एक पागल है।" बहुत दिनों तक नगर के लोग घर-घर में अनेक तरह की बातें करते उस भाट पर हँसते रहते। धीरे-धीरे उस पागल की याद सबों के मन से जाती रही।

कुछ दिनों के बाद जब राजा दरबार में बैठा था कि वही भाट सहसा उसके सामने आ खड़ा हुआ और मैली-कुचैली पगड़ी को राजा के सामने रख कर फूट-फूट कर रोने उगा। राजा ने आतुरता से पूछा- "क्यों भाई, इस तरह दुःखित क्यों हो रहे हो?" राजा की बात सुन कर भाट बोला-"क्या सुनाऊँ, महाराज! यह कहते हुए दुःख होता है कि महाराज के नाम का अपमान हो गया है।" और भी आतुर होकर राजा ने पूछा-"क्या हुआ है ?"

"महाराज की यह पगड़ी सिर पर रख कर में देश-देश में घूमता रहा। राजाओं के दरबार में जा कर कविताएँ पढ़ी। जिस राजा के पास गया, उस के सामने सिर झुकाने के पहले, आप की यह पगड़ी अपने सिर से उतार कर अपने दाहने हाथ में रख ली और बाएँ हाथ से उसे सलाम किया। जब कोई पूछता कि ऐसा कर रहे हो तो में जवाब देता- "यह चक्रवर्ती आलूहर महाराज की पगड़ी है। यह पगड़ी किसी को सलाम नहीं कर सकती।"

उसकी यह बात सुन कर आलूहर की खुशी का ठिकाना न रहा। दरबारियों ने

जोश के साथ कहा-"शवाश कविराज ! तुमने महाराज के गौरव को खूब बढ़ाया।"

"लेकिन महाराज, आखिर तक आप के गौरव की रक्षा मुझसे न हो सकी। मारवाड़ के राजा जयदेव के दरबार में महाराज की इस पगड़ी का भारी अपमान हो गया।"

"क्या हुआ?" राजाने फिर पूछा। "अभ्यास के मुताबिक जैसे ही मैंने उसको नमस्कार किया तो उसने भी मुझसे इसका कारण पूछा। मैंने वही जवाब दिया जो औरों को दिया था। मेरा जवाब सुन कर वह विचलित हो उठा और दूसरे राजाओं की तरह वह आप की तारीफ़ न सुन सका। उल्टा राजगद्दी से उठा और मेरे हाथ से पगड़ी छीन ली। फिर उसे अपने पैरों से रौंदा और मुझे मार-पीट कर दरबार से निकाल दिया।" भाट ने यह बातें कुछ इस तरह कहीं कि राजा के दिल में धाव-सा हो गया।

भाट की बात सुन कर आलूहर गुस्से से जल उठा। इसके साथ साथ सभी सभासद गरज उठे-"महाराज का अपमान करने वाले उस जयदेव का होश दुरुस्त कर देना चाहिए। महाराज, तुरत सेना भेजिए और जयदेव के गर्व को चूर-चूर कर डालिए।"

दरबार में एक बूढ़ा मन्त्री भी था। उसने कहा-"एक कपड़े के टुकड़े के लिए दूसरे राजा से बैर मोल लेना ठीक नहीं।" लेकिन नक्कार खाने में तूती की आवाज कौन सुनता !

आलूहर युद्ध की घोषणा किए बिना ही खुद सेना लेकर मारवाड़ की राजधानी मनडुल-नगर पर चढ़ गया। फिर जयदेव और आलूहर के बीच घमासान लड़ाई हुई। जयदेव लड़ते-लड़ते रण भूमि में सो गया और मनडुल के किले पर आलूहर का कब्जा हो गया। अपने अपमान का ऐसा बदला पाकर उस भाट की खुशी का ठिकाना न रहा।

साहसी विक्रम

उज्जैन नगर में बड़े-बड़े राजा हो गए हैं। एक बार वहाँ एक बहुत बड़ा अन्यायी राजा हुआ। उसके अत्याचारों की वजह से प्रजा में असन्तोष हुआ और कुछ दृढ़ सङ्कल्प बालों ने राजा के विरुद्ध एक जबरदस्त आन्दोलन खड़ा कर दिया। वह दुष्ट राजा डर गया और उज्जैन छोड़ कर भाग खड़ा हुआ।

उज्जैन के पास नर्मदा नदी बहती है। नर्मदा के उस तरफ के प्रदेशों पर राजा मार्तण्ड का शासन था। अपने राज्य से भागे हुए उज्जैन के राजा ने मार्तण्ड-महाराज की शरण ली। उसने उज्जैन के राजा की दुष्टताओं का ख्याल न किया और उसकी उस दुरवस्था पर तरस खा कर, उज्जैन पर चढ़ाई करने को तैयार हो गया।

इस बीच उज्जैन में जनता का राज्य कायम हो गया। देश के सभी छोटे-बड़े युवक योद्धा, इस अपने नए राज्य को जी-जान से मजबूत बनाने लगे। यों अत्याचारी शासन का खातमा हुआ। उद्योग-धन्धे बनिज व्यापार सब ठीक-ठीक चलने लगे। हाकिम हुक्काम निरभिमान होकर काम करने लगे। किसी को चोरों का भय और जान जाने का डर नहीं रह गया। जनता में एक नव-जीवन का आरम्भ हुआ और अत्याचारी शासन से मुक्त होकर लोगों ने सुख की साँस ली।

ऐसे समय जन-राज्य के गुप्तचरों ने उज्जैन वालों को मार्तण्ड महाराज की चढ़ाई की खबर दी। देश के चुने हुए शासनाधिकारी यह बात सुन कर घबरा उठे। क्योंकि उज्जैन के पास सैनिक शक्ति बहुत थोड़ी थी। डर था कि मार्तण्ड महाराज की जीत होगी। सेना जमा करने का मौका भी उज्जैन वालों को नहीं मिला।

अशोक कमल गुप्ता

इस सङ्कट फाल में उज्जैन वालों ने एक आम सभा बुलाई। उस सभा में "उज्जैन की रक्षा करो।" का नारा जोर से लगने लगा ।

"उज्जैन की रक्षा कौन करेगा ? जो इसका उपाय बता सकता है, वह आगे आए।" बड़े-बूढ़ों ने सवाल किया।

नौजवानों में से एक आदमी भीड़ को चीरता आगे आया और जोशीली आवाज़ में बोला-"सिर्फ़ बीस-योद्धा मुझे दे दो। मैं उज्जैन की रक्षा करूँगा।" उस नौजवान की यह बात सुन कर सब लोग अचरज में पड़ गए। बीस हज़ार सधे हुए योद्धा जहाँ चढ़े आ रहे हों, वहाँ यह नौजवान केवल बीस सैनिकों के साथ मुकाबला करेगा। यह कैसे सम्भव हो सकता है ?

उनके इस सन्देह का उसने इस तरह समाधान किया-"उज्जैन के अन्दर आने को मार्तण्ड महाराज की सेना के लिए केवल एक रास्ता है। और वह है नर्मदा नदी का पुल। उस पुल पर से एक के पीछे एक आदमी ही आ-जा सकता है। अगर हम उस पुल के खम्भों की आड़ में खड़े हो जाएँ तो एक चींटी भी वहाँ से बच कर नहीं जा सकती है। जरूरत पड़ने पर हमारे बीस

सिपाही ही उस पुल को तोड़ भी सकते हैं। इसलिए बड़ी सेना को देख कर हमें डरने की जरूरत नहीं।"

विक्रम का यह जवाब सुनकर सब लोग बहुत खुश हो गए। सहसा विक्रम के साथ जाने के लिए अनेकों नौजवान आगे आ गए। उनमें से बीस नौजवानों को विक्रम ने चुन लिया और शीघ्र नर्मदा नदी के किनारे पहुँच गया। फिर खम्भों के बीच छिपकर बैठने की जगह ठीक कर ली।

सूर्योदय होते ही मार्तण्ड महाराज की सेना उस लकड़ी के पुल को पार करने लगी।

इधर वीर विक्रम सबसे आगे आकर पुल पर खड़ा हो गया और जो लोग आते गए उन्हें वह सलवार के घाट उतारने लगा।

मार्तण्ड महाराज की सेना इस अदृश्य मृत्यु का रहस्य न समझ कर घबरा उठी। उसकी खोज में जो जो लोग आगे आए, विक्रम के हाथों मौत के मुँह में पहुँचते गए। यह देख कर लोग घबरा उठे और उल्टे पैर भाग खड़े हुए।

यह खबर कान में पड़ते ही मार्तण्ड महाराज के हाथ-पैर फूल गए। उन्होंने सैनिकों की गुप्त हत्या करने वालों का पता लगाने का अनेक तरह से उपाय सोचा। छोटी-छोटी डोङ्गियों में भर कर बहुत से सैनिकों को नदी के उस पार भेजने की कोशिश की। लेकिन बीच धार में जाते-जाते उस पार के पेड़ों की आड़ से, बाण आ आ कर सैनिकों को नदी में सुलाने लग गए।

उधर पुल की रक्षा करने वाले वीरों की हालत भी अच्छी नहीं कही जा सकती थी। क्योंकि मरे हुए सैनिकों की आड़ में छिप छिप कर शत्रु सेना आगे बढ़ती ही आ रही थी। वीर-रक्षकों के बाण उन्हें रोकने में असमर्थ हो रहे थे। खम्भों की आड़ में खड़े कुछ लोग घायल भी हो चुके थे।

विक्रम समझ गया कि अगर इसी तरह दुश्मन के सिपाही प्राणों पर खेलते आगे बढ़ते आए तो पुल की रक्षा असम्भव हो जाएगी।

कुल्हाड़ों से पुल को तोड़ने और टूट जाने पर पुल के पीछे रहने वालों को वहीं से लौट जाने का विक्रम ने आदेश दिया। वीर विक्रम को छोड़ कर और सभी लोग पुल के गिरने के पहले ही उस किनारे पर पहुँच गए। थोड़ी देर में करीब-करीब सारा पुल टूट कर नर्मदा नदी की धारा में वह गया।

विक्रम के सिवा उसके सभी सङ्गी-साथी उस किनारे पर पहुँच गए थे। मार्तण्ड-महाराज के सिपाहियों ने बीर विक्रम को जीवित पकड़ लिया और वे मुश्कें बाँध कर शिविर में ले गए।

उस समय मार्तण्ड महाराज अपने प्रधान अनुचरों के बीच बैठे आग ताप रहे थे। तभी सिपाहियों ने विक्रम को उनके सामने हाजिर किया। ज्वाला के प्रकाश में विक्रम का गर्वीला चेहरा और भी चमक उठा।

"मैं कायर नहीं जो भाग जाऊँ। मेरी मुश्के खोल दो।" विक्रम ने गरज कर कहा।

"छिप कर मेरे सिपाहियों को मारने बाले तुम शूर-वीर कैसे हो सकते हो ?" मार्तण्ड महाराज ने होठ काटते हुए कहा।

"एक अधर्म युद्ध में आत्म-रक्षा के लिए और किया ही क्या जा सकता है?" विक्रम ने गम्भीर-स्वर में कहा।

"क्या वह अधर्म युद्ध था ?"

"हाँ! डङ्के की चोट पर कहता हूँ- अधर्म-अधर्म-अधर्म ! सौ बार अधर्म। आपने हम पर बिना कारण और चुपचाप चढ़ाई कर दी। युद्ध

की घोषणा भी नहीं की। क्या यह अधर्म युद्ध नहीं कहा जाएगा ?"

"एक अराजक देश के ऊपर चढ़ाई करने में घोषणा को क्या जरूरत ?"

"हमारा देश अराजक नहीं, उस राज्य पर जनता का राज्य है। जनता ही वहाँ की राजा है।"

"जनता राज्य कोई राज्य नहीं माना जा सकता। वह राज्य कायम भी नहीं रह सकता।

"हम अपने उस जन-राज्य को जरूर कायम रखेंगे। मेरी मुश्के खोल दीजिए। मैं आप से कुछ बात-चीत करना चाहता हूँ।" बिक्रम ने ब्यग्रता से कहा।

मार्तण्ड महाराज ने उसकी मुश्कें खुलबा दीं। और उसे पास ही बैठ जाने को कहा।

"मैं तुम्हारे देश को एक पल में नष्ट कर दूँगा। तुम्हारे जैसे कायरों की मुझे परवाह ही क्या है? जब तक तुम अपने देश में एक राजा नहीं बना लेते, तब तक मैं उसे एक राज्य नहीं मान सकता।" मार्तण्ड महाराज ने उपेक्षा से कहा।

"मेरे देश में मुझसे कहीं ज्यादा साहसी युवक तैयार हैं। वे लोग अपने राज्य की जी-जान से रक्षा करेंगे। वे कैसे साहसी हैं, यह मैं आपको बताना चाहता हूँ।"

उसी समय आग से विनगारियाँ उड़ीं और उसकी पलकों पर आ बैठी। लेकिन वीर विक्रम चौंका भी नहीं। ज्यों-का-त्यों बैठा रह गया। राजा अचम्भे में पड़ कर बोला-"जरा दूर हट कर बैठो- चिनगारियों उड़ रही हैं।"

"इन नाचीज चिनगियों की क्या हस्ती है महाराज ? जब हम बड़े-बड़े भूपालों के क्रोधानल में कूद पड़ते हैं और उन्हें कोयला बना देते हैं। हमारी धमनियों में जो खौलता खून बह रहा है, उसके सामने इन सूखी लकड़ियों की आग क्या चीज है ?....देखिएगा.." ऐसा कहते हुए उसने अपना दाहिना हाथ झट से आग में डाल दिया।

विक्रम का साहस और उस की दृढ़ता को देख कर मार्तण्ड-महाराज दङ्ग रह गए। उसने विक्रम को सादर मुक्त कर दिया और दूसरे ही दिन अपने दल बल के साथ डेरा डण्डा उठा कर भाग खड़े हुए।

किसी जमाने में बिन्ध्याचल राज्य के ऊपर हरिहर राय का शासन था।

राजा के एक ही बेटी थी जिस का नाम था विद्यावती। वह सयानी हुई। शादी की तैयारियाँ धूम-धाम से होने लगी। देश देश से चतुर कारीगर बुलवाए गए। नये नये मकान बनने लगे। मण्डप और चित्रशालाओं की रचना होने लगी।

सजावट पूरी हुई। विवाह मण्डप भी तैयार हो गया। मन्त्रियों और परिजनों के साथ आकर राजा ने सब का स्वागत-सत्कार किया। सब सन्तुष्ट थे। कोई कमी न थी। लेकिन मण्डप की दीवारों पर जो चित्र बने थे, वे बिलकुल मामूली जान पड़ते थे। उनमें कोई विशेषता नहीं दीख पड़ती थी। राजा को केवल यही कमी खटक रही थी।

राजा का रूख देखकर मन्त्री ने निवेदन किया-"हम घोषणा करेंगे कि अद्‌भुत चित्र बनाने वालों को हम मुँह-माँगा इनाम देंगे। उसके लिए जरूर योग्य व्यक्ति आ जाएँगे।" राजा को यह सलाह जँच गई।

ढिँढोरा पीटा गया। कुछ दिन के बाद दूर देश से दो चित्रकार आए। दोनों ने अपनी अपनी तारीफ कह सुनाई। दूसरे चित्रकार ने सिर्फ एक प्रार्थना की-"पहला चित्रकार जिस दीवार पर चित्र बनाए, ठीक उसके आमने सामने की दीवार पर मैं अपना चित्र बनाऊँ--इसकी आज्ञा मुझे दी जाए।"

राजा ने उसकी यह शर्त मान ली। दोनों के लिए दीवारें खड़ी की गई। फिर चित्रकारों ने अपनी अपनी कूचियाँ सम्भाली

नरेन्द्र ठाकुर

दोनों अपने अपने काम में जुट गए। ठीक एक महीना पूरा हुआ। राजा को खबर भेज दी गई। मन्त्री, सामन्त, पण्डित और परिजनों के साथ आकर, राजा सब से पहले प्रथम चित्रकार की दीवार के पास गया और पर्दा हटा कर देखने लगा। राजा और उनके साथ के सब लोग अचरज में डूब गए। समस्त प्रकृति उस दीवार पर नाच रही थी। राजा ने कहा-"अद्‌भुत! अत्यद्‌भुत !"

किसी की आज्ञा लिए बगैर ही दूसरे चित्रकार ने अपने चित्र का आवरण हटा दिया। लोगों की दृष्टि उस ओर मुड़ी। राजा देखते ही मन्त्र-मुग्ध हो गया। कुछ देर के बाद होश में आने पर बोला-"आहा, कैसी सुषमा !"

पहले चित्रकार का चित्र अत्यन्त स्वभाविक था और आश्चर्य उत्पन्न कर रहा था। दूसरे के चित्र ठीक वैसे ही था। लेकिन उनमें एक अद्‌भुत जीवन्त ज्योति भरा हुआ था। "दोनों ने किस तरह ठीक एक-से चित्र बनाए ? इनाम अब किसे दिया जाए?" यह समस्या उठ खड़ी हुई।

इसके बाद धीरे-धीरे इसका रहस्य लोगो को मालूम हुआ। दरअसल दूसरे चित्रकार ने कोई चित्र नहीं बनाया था। जब से पहले चित्रकार ने अपना काम आरम्भ किया, तब से वह अपनी दीवार को एक तरह के मसाले से चिकनाने और चमकाने लग गया। माँजते माँजते वह दीवार आईने की तरह चमकने लगी। उसके सामने ही दूसरा चित्रकार चित्र बना रहा था और ये सब चित्र इस दीवार पर पड़ कर बिजली की तरह चमक उठे! उस प्रतिबिम्ब ने ही राजा और उसके दरबारियों को आश्चर्य में डाल दिया था।

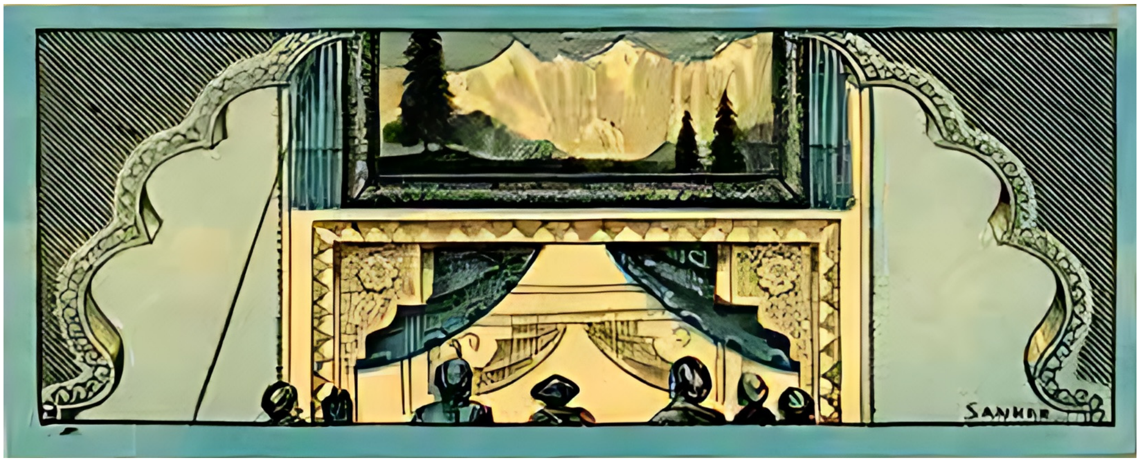

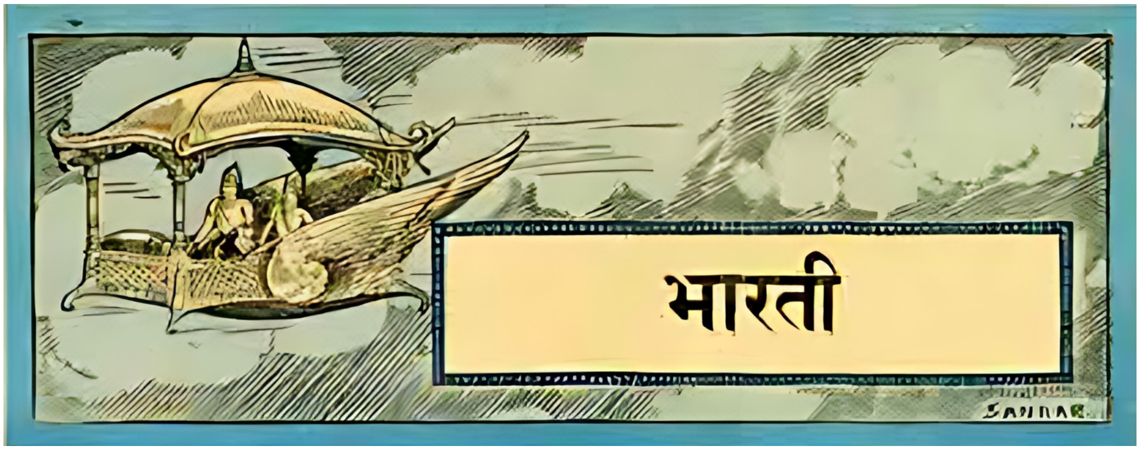

भारती

किसी जङ्गल में भारती नाम की एक चिड़िया रहती थी। बचपन से वह परोपकारी स्वभाव की थी। मृत्यु लोक में जब उसकी आयु पूरी हो गई, तो उसके पुण्य-प्रभाव से देव-दूत विमान लेकर आए और उसको बिठा कर स्वर्ग ले गए।

वहाँ देवताओं ने उसका बड़ा सम्मान किया और पूछा-"क्या चाहिए तुम्हें ?" इसका क्या जवाब दिया जाए ? भारती को कुछ भी नहीं सूझ पड़ा।

कुछ दिनों तक स्वर्ग में रहने के बाद, भारती देवेन्द्र के पास पहुँची और बोली-"मुझे यहाँ कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। इसलिए मुझे फिर से भूलोक में भेज दीजिए !" देवेन्द्र ने उसे वरदान दिया-"तुम चाहे जो रूप धारण कर सकती हो और जिस लोक में जाना चाहो, जाकर सुख पूर्वक बिहार कर सकती हो।"

तब भारती 'परी' का रूप लेकर भूलोक में उतर आई। पृथ्वी पर उतरते ही, फिर वह उस जङ्गल में चली गई जहाँ वह पहले रहती थी, और उसी जगह पर घर बना कर रहने लगी। इस प्रकार जब उस जङ्गल में रह रही थी तो एक दिन.....

भारती को अपने बचपन की एक बात याद आ गई। बचपन में भारती शहर में रहने वाले अपने चाचा के घर गई थी। उस नगर में बहुत-सी सुविधाएँ थीं। अनेक प्रकार के अमोद-प्रमोद थे। इसलिए वहाँ जी न लगने का कोई कारण नहीं था। हमेशा खुशी-खेल में समय बिताया जा सकता था।

अब, जब भारती को वह मीठी बात याद आ गई तो उसकी बुद्धि भी बदली। वह सोचने लगी-"इस जङ्गल में अकेला कैसे रहा

राज रानी नैयर

जाए, कुछ रुचता नहीं। तो चलूँ-- शहर में चाचा के ही घर जाकर रहूँ। वहाँ सब तरह के सुख-आराम रहेंगे वहीं रह जाऊँगी। फिर इस जङ्गल में आऊँगी ही नहीं। वहाँ भारती देवी कहलाने में मुझे गौरव भी होगा।"

ऐसा सोच कर उसने शहर में जाने का निश्चय कर लिया। यह निश्चय होते ही भारती बड़े तड़के उटी, भोजन बना कर खाया पिया, फिर अच्छे-अच्छे कपड़ों से अपने को खूब सजाया। रास्ते के लिए आवश्यक रुपये-पैसे रख लिए, घर में ताला लगा दिया, चाबी खिड़की के छेद में छिपा दी।

फिर पैदल ही शहर की ओर घर से निकल कर चल पड़ी। जैसे ही वह दो कदम आगे बढ़ी कि "भारती देवी ! भारती देवी !" पुकारता हुआ एक मृगछौना उसके सामने आ खड़ा हुआ। वह डर से काँप रहा था। बार-बार मुड़ कर पीछे की ओर देख रहा था ! "क्या है भाई छौना ? यों क्यों काँप रहे हो ?" भारती ने मृगछौने से पूछा।

'क्या कहूँ ! हमारे जङ्गल में एक शिकारी घुस आया है। वह हाथ में बन्दूक लिए हुए हैं, और नज़र में पड़ने वाले सभी जीवों को धूल में मिलाता जा रहा है। भारती, जरा मुझे "अपने घर में छिपने की जगह दोगी ?" यों वह निहोरा करने लगा। "बहुत अच्छा !" दया से सहज ही पिघल जाने वाली भारती ने छिपी हुई चाबी निकाली, दरवाजा खोला और उस मृग छौने को अन्दर ले जाकर कहा-"छौना ! मेरा आँगन अनेक तरह के साग-सब्जियों से लहलहा रहा है। फल देने वाले बहुत से पेड़-पौधे भी हैं। तू मजे से यहाँ रह।"

ऐसा कह कर उसने फिर दरवाजा बन्द कर दिया, चाबी खिड़की में छिपा दी और चाचा के यहाँ शहर जाने को तैयार हो गई।

ठीक दो कदम चली होगी फिर कि "भारती! भारती !" की करुण पुकार सुनाई पड़ी। भारती ने सोचा फिर किसी पर मुसीबत आ पड़ी है। सोच ही रही थी कि एक बतख सामने से आती हुई दिखाई पड़ी।

"क्या है बतखी! क्या हुआ है ?"

"क्या कहें तुम से, भारती देवी ? मेरे लोग सरोवर में नहाने आए थे। मैं तैरती चली गई और बुलाने पर भी नहीं लौटी। वे लोग घर लौट गए। मैं अब रास्ता भूल गई हूँ।"

भारती उस बतख को पुचकारने लगी-"बहन, डर नहीं। अब तू मेरे घर में आ गई है। मेरे आँगन में एक बड़ी सरसी है। उस में तू मन-मानी जल-क्रीड़ा कर सकती है। मृगछौना तेरा साथी होगा। जब मैं चाचा के घर से लौटूँगी, तब तुझे घर पहुँचा दूँगी।" यों कह कर उसने चाबी निकाली, दरवाज़ा खोला और अन्दर ले जाकर अपनी सरसी में बतख को डाल दिया। फिर दरवाजा बन्द करके चाबी छिपा कर वह चाचा के घर चल पड़ी।

बहुत देर होती जा रही थी। इसलिए भारती ने पग जरा बढाए। चार

कदम भी नहीं गई थी, कि फिर एक स्वर सुनाई पड़ा-"भारती ! भारती !" सहसा रुक कर भारती ने पीछे की ओर देखा।

देखती क्या है! एक छोटी गिलहरी दौड़ी आ रही है। उसका मुँह सूखा हुआ था। भारती ने दुलार से पूछा-"सखी, यों उदास क्यों दीख पड़ती हो ?"

"क्या कहूँ, तुम से बहन ? बारिश के दिनों के लिए जरूरी दाना लाकर पेड़ के खोखले में जमा कर लिया था। फिर कुछ और दाने जमा करने की गरज से मैं बाहर गई हुई थी कि इतने में काई आया और मेरा

जमा किया हुआ आहार चुरा ले गया। इतने दिन की मेहनत बेकार हो गई। यही नहीं; आज खाने के लिए भी एक दाना घर में नहीं है।"

यह सुन कर भारती ने कहा-"सखी! अब उसकी चिन्ता क्यों करती हो ? मेरे घर में खाने लायक बहुत से धान के दाने इधर-उधर पड़े हुए हैं। तुम जब तक चाहो मेरे साथ रह सकती हो। मेरे आने तक यह बतख और यह छौना तुम्हारे साथी रहेंगे।" यह कह कर उसने खिड़की से चाबी निकाली, दरवाजा खोला और गिलहरी को घर के भीतर ले गई।

भारती ने फिर से दरवाजा बन्द किया, चाबी खिड़की से छिपाई और चाचा के घर चली। यह सब करते धरते साँझ हो आई।

घर से निकल कर उसने एक कदम भी नहीं रखा होगा कि भारती की मति बदली। वह फिर घर में लौट आई। दरवाजा खेल कर भीतर गई और गहने-कपड़े सब उतार डाले। साज शृङ्गार मिटा दिए और जाकर आराम कुर्सी पर लेट गई। "मेरे इस जङ्गली प्रदेश में, मेरे साथी जीव-जन्तु, अनेक प्रकार के कष्ट उठा रहे हैं ! फिर में इन्हें छोड़ कर दूसरी जगह कैसे जाऊँ? मेरे साथी जब यहाँ तकलीफ झेल रहे हैं; तो क्या मुझे वहाँ शहर में कोई सुख मिलेगा ? इसलिए मैं अब अपने साथियों के बीच इस जङ्गल में ही रहूँगी। कहीं नहीं जाऊँगी।" भारती ने सोचा।

बचपन में कभी वह शहर देख आई थी। लेकिन फिर देखने की उसकी लालसा पूरी न हो सकी।

CHANDAMAMA (Hindi) OCTOBER 1953 Regd. No. M. 8452

रङ्गीन चित्र-कथा, चित्र-२